[2009] 2 एससीआर 369

राम नरेश प्रसाद बनाम

झारखंड राज्य एवं अन्य।

आपराधिक अपील संख्या 290/2009

12 फ़रवरी, 2009

[डॉ। अरिजीत पसायत और डॉ. मुकुंदकम शर्मा, जे.जे.]

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 :

धारा 319 - चार आरोपी - अपीलकर्ता को आरोपी के रूप में बुलाने के लिए आवेदन ट्रायल कोर्ट द्वारा खारिज कर दिया गया और अंतिम निर्णय प्राप्त हुआ
- 4 आरोपियों को दोषी करार दिया गया - जांच के बाद अपीलकर्ता से संबंधित अंतिम रिपोर्ट पेश की गई, जिसे स्वीकार कर लिया गया - दो साल बाद अजनबी ने अंतिम रिपोर्ट स्वीकार करने के आदेश के खिलाफ पुनरीक्षण दायर किया - सत्र न्यायाधीश ने पुनरीक्षण को स्वीकार किया और सीजेएम को मामले की सुनवाई करने का निर्देश दिया - सीजेएम ने अपीलकर्ता को दोषी करार देने का आदेश दिया
-इसके खिलाफ पुनरीक्षण खारिज -रिट याचिका भी खारिज -अपील पर, निर्णय: मामला यह सवाल उठाता है कि क्या अजनबी पुनरीक्षण दायर कर सकता है और यदि इसे 2 साल देरी से दायर किया जाता है तो क्या देरी के लिए माफी के बिना इसे स्वीकार किया जा सकता है
- इन प्रश्नों पर निर्णय हेतु मामला वापस भेजा गया - पुनरीक्षण।

अज्ञात व्यक्तियों के खिलाफ़ प्राथमिकी दर्ज की गई थी। आरोप था कि पाँच मूर्तियाँ चोरी की गई थीं। जाँच की गई लेकिन कोई ठोस सुराग न मिलने पर अंतिम रिपोर्ट पेश की गई जिसे मजिस्ट्रेट ने स्वीकार कर लिया। लगभग एक हफ़्ते बाद चार लोगों को गिरफ़्तार किया गया। पुलिस ने उनके खिलाफ़ पूरक अंतिम प्रपत्र दाखिल किया। अपीलकर्ता के खिलाफ़ अंतिम प्रपत्र दाखिल किया गया। मजिस्ट्रेट ने सभी चार अभियुक्तों को दोषी ठहराया। सुनवाई के दौरान अभियोजन पक्ष ने अपीलकर्ता को अभियुक्त के रूप में बुलाने के लिए Cr.PC की धारा 319 के तहत एक आवेदन दायर किया, जिसे खारिज कर दिया गया। इसे किसी उच्च न्यायालय में चुनौती नहीं दी गई लेकिन जाँच जारी रखी गई। 22.5.1999 को जाँच के बाद ,

अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी। उसे स्वीकार कर लिया गया।

2 साल बाद, प्रतिवादी संख्या 2, जो न तो शिकायतकर्ता था और न ही कथित अपराध से उसका कोई संबंध था, ने 22.5.1999 के आदेश के खिलाफ सत्र न्यायाधीश के समक्ष पुनरीक्षण याचिका दायर की। 18.2.2002 के आदेश द्वारा, पुनरीक्षण याचिका को अनुमति दी गई और सीजेएम को निर्देश दिया गया कि वे सूचनाकर्ता या एपीपी को सुनें, केस डायरी को मूल और पूरक दोनों तरह से देखें और फिर कानून के अनुसार आदेश पारित करें।

29.8.2002 को सीजेएम ने धारा 413 और 414 आईपीसी के तहत दंडनीय अपराधों के लिए संज्ञान लेते हुए एक आदेश पारित किया और जहां तक अपीलकर्ता का संबंध था, गैर- जमानती वारंट जारी किया गया। पीड़ित अपीलकर्ता ने सत्र न्यायाधीश के समक्ष एक पुनरीक्षण याचिका दायर की जिसे खारिज कर दिया गया। आदेशों की सत्यता पर सवाल उठाते हुए, एक रिट याचिका दायर की गई जिसे खारिज कर दिया गया।

में अपीलकर्ता ने तर्क दिया कि सत्र न्यायाधीश द्वारा पुनरीक्षण आदेश पारित करने से पूर्व अपीलकर्ता को नहीं सुना गया; पुनरीक्षण याचिकाकर्ता के पास याचिका दायर करने का कोई अधिकार नहीं था क्योंकि वह सूचनाकर्ता नहीं था; और सत्र न्यायाधीश ने पुनरीक्षण याचिका की स्वीकार्यता के प्रश्न पर प्रथम दृष्टया निर्णय नहीं किया।

अपील को आंशिक रूप से स्वीकार करते हुए न्यायालय ने

निर्णय: मामला उच्च न्यायालय को यह विचार करने के लिए भेजा जाता है कि क्या प्रतिवादी संख्या 2 के कहने पर सत्र न्यायाधीश के समक्ष पुनरीक्षण याचिका स्वीकार्य थी और वह भी काफी समय बीत जाने के बाद; क्या अपीलकर्ता को सुनने की आवश्यकता है; और क्या सूचनादाता को नोटिस दिया जाना चाहिए। [पैरा 8] [381-ई, एफ, जी]

अभिनंदन झा एवं अन्य . बनाम दिनेश मिश्रा एआईआर (टी968) एससी 117 - संदर्भित।

केस लॉ संदर्भ

एआईआर (1968) एससी 117 पैरा 6 का संदर्भ दिया गया

आपराधिक अपील क्षेत्राधिकार: आपराधिक अपील संख्या 290/2009

Crl) संख्या 284/2002 के अंतिम निर्णय एवं आदेश दिनांक 17/28.3.2006 से।

नागेन्द्र राय , सूर्यकांत और प्रणव व्यास , अपीलार्थी की ओर से उपस्थित थे।

प्रतिवादी की ओर से मनीष कुमार सरन, निर्मल कुमार अंबष्ठ , फुजैल खान, अक्षलिया कुमार, शेफाली जैन, राजेश प्रसाद सिंह और रंजना नारायण।

न्यायालय का निर्णय निम्नलिखित द्वारा सुनाया गया:

डॉ. अरिजीत पसायत, जे.

1. अनुमति प्रदान की गई।

2. इस अपील में झारखंड उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय को चुनौती दी गई है। अपीलकर्ता ने रिट याचिका (सीआरएल) संख्या 284/2002 दायर की थी, जिसमें दंड पुनरीक्षण संख्या 53/2001 में विद्वान सत्र न्यायाधीश पलामू द्वारा पारित दिनांक 18.2.2002 के आदेश को रद्द करने की प्रार्थना की गई थी। उक्त आदेश द्वारा विद्वान सत्र न्यायाधीश ने पुलिस द्वारा प्रस्तुत अंतिम रिपोर्ट को स्वीकार करने वाले विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के आदेश को रद्द कर दिया और उन्हें केस डायरी का अवलोकन करने और सूचक को सुनने के बाद एक नया आदेश पारित करने का निर्देश दिया। आगे की प्रार्थना भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में 'आईपीसी') की धारा 413 और 414 के तहत दंडनीय अपराधों का संज्ञान लेते हुए रिमांड पर विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश को रद्द करने की थी।

3. पृष्ठभूमि तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैं:

अरुण कुमार मिश्रा (जिन्हें आगे 'सूचनादाता' - प्रतिवादी संख्या 4 कहा जाएगा) ने निम्नलिखित आरोप दायर किए हैं :

पलामू जिले के बिश्रामपुर पुलिस स्टेशन में प्रथम सूचना रिपोर्ट (संक्षेप में 'एफआईआर')। यह कहा गया था कि पिछली रात कुछ अज्ञात व्यक्तियों ने ठाकुर बाड़ी से पांच मूर्तियां चुरा ली थीं। एफआईआर के आधार पर पुलिस ने धारा 457 और 380 आईपीसी के तहत दंडनीय अपराध से संबंधित मामला दर्ज किया। जांच की गई लेकिन किसी भी ठोस सुराग के अभाव में, अंतिम रिपोर्ट 4.1.1997 को प्रस्तुत की गई, जिसे विद्वान न्यायिक मजिस्ट्रेट ने स्वीकार कर लिया। लगभग एक सप्ताह के बाद 12.1.1997 को रघु ठाकुर नामक व्यक्ति को गिरफ्तार किया गया और उसने ग्रामीणों के सामने एक न्यायिक स्वीकारोक्ति की। उक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति के आधार पर चार लोगों को हिरासत में लिया गया जो रघु ठाकुर, अलक सिंह, द्वारिका साव और विजय कुमार सोनी थे । 12.3.1997 को पुलिस ने उपरोक्त चार व्यक्तियों के खिलाफ पूरक अंतिम प्रपत्र पेश किया, जिसमें धारा 457, 380, 411 और 414 आईपीसी के तहत दंडनीय अपराधों का संकेत दिया गया था। जहां तक अपीलकर्ता का संबंध है, अंतिम प्रपत्र दायर किया गया था। विद्वान न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी ने अपने फैसले दिनांक 27.1.1999 द्वारा सभी चार आरोपियों को दोषी ठहराया। मुकदमे के दौरान अभियोजन पक्ष ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में ' सीआरपीसी ') की धारा 319 के तहत एक आवेदन दायर किया जिसमें अपीलकर्ता को आरोपी के रूप में बुलाने की प्रार्थना की गई थी। उक्त आवेदन को ट्रायल कोर्ट ने खारिज कर दिया था। इसे किसी उच्च न्यायालय में चुनौती नहीं दी गई लेकिन जांच को जीवित रखा गया। जांच को जिला पुलिस से सीआईडी पुलिस ने अपने हाथ में ले लिया लगभग दो साल बाद 18.2.2002 को प्रतिवादी संख्या 2, एक अभ्यासशील अधिवक्ता जो न तो शिकायतकर्ता था और न ही कथित अपराध से उसका कोई संबंध था, ने दिनांक 22.5.1999 के आदेश के विरुद्ध पलामू के विद्वान सत्र न्यायाधीश के समक्ष पुनरीक्षण याचिका दायर की । दिनांक 18.2.2002 के आदेश द्वारा पुनरीक्षण याचिका को स्वीकार कर लिया गया और विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को निर्देश दिया गया कि वे सूचक या एपीपी की सुनवाई करें, मूल और पूरक दोनों तरह की केस डायरी का अवलोकन करें और फिर कानून के अनुसार आदेश पारित करें।

अपीलकर्ता के अनुसार कोई नोटिस जारी नहीं किया गया।

अपीलकर्ता की न तो कोई सुनवाई हुई और न ही उसकी बात सुनी गई। यद्यपि पुनरीक्षण याचिका बहुत विलम्ब से दायर की गई थी, फिर भी उसे एकपक्षीय रूप से स्वीकार कर लिया गया और वह भी विलम्ब के लिए कोई माफी दिए बिना । अपीलकर्ता को इन बाद की घटनाओं के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। 29.8.2002 को विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने धारा 413 और 414 आईपीसी के तहत दंडनीय अपराधों के लिए संज्ञान लेते हुए एक आदेश पारित किया और जहां तक अपीलकर्ता का संबंध है, उसके लिए गैर- जमानती वारंट जारी किया गया था। विद्वान सीजेएम के 29.8.2002 के आदेश से व्यथित होकर, अपीलकर्ता ने विद्वान सत्र न्यायाधीश के समक्ष एक पुनरीक्षण याचिका दायर की, जिन्होंने उसे खारिज कर दिया। उपरोक्त दोनों आदेशों की सत्यता पर सवाल उठाते हुए, एक रिट याचिका दायर की गई, जिसे आपत्तिजनक आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया।

4. अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने दलील दी कि पहली बार में पुनरीक्षण न्यायालयों द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया कानून के लिए अज्ञात है। पुनरीक्षण में विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा आदेश पारित किए जाने से पहले किसी भी चरण में अपीलकर्ता को नहीं सुना गया। पुनरीक्षण याचिकाकर्ता के पास याचिका दायर करने का कोई अधिकार नहीं था क्योंकि वह सूचनादाता नहीं था। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने पहली बार पुनरीक्षण याचिका की स्वीकार्यता के सवाल पर फैसला नहीं किया। सीमा के सवाल की भी जांच नहीं की गई।

5. प्रतिवादी संख्या 2 व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुए थे और उनके अनुसार राज्य अपीलकर्ता का पक्ष ले रहा था, और उन्हें पुनरीक्षण याचिका दायर करने के लिए मजबूर किया गया।

6. राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने स्वीकार किया कि यदि धारा 319 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत याचिका खारिज कर दी गई थी, तो राज्य द्वारा उस संबंध में आदेश की सत्यता पर प्रश्न उठाने के लिए कोई और कदम उठाने की आवश्यकता नहीं थी।

7. अभिनंदन में झा एवं अन्य बनाम दिनेश मिश्रा (एआईआर 1968 एससी 117) में निम्नलिखित टिप्पणी की गई:

> "5. अपीलकर्ताओं की ओर से, आपराधिक अपील संख्या 218/1966 में, विद्वान वकील श्री झा ने बताया कि जब पुलिस द्वारा संहिता की धारा 173(1) के तहत अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती है, जिसमें कहा जाता है कि कोई मामला नहीं बनता है

पास पुलिस को आरोप-पत्र दाखिल करने का निर्देश देने का कोई अधिकार नहीं है। वकील मजिस्ट्रेट को यह बता सकते हैं कि पुलिस को आगे की जांच करने का निर्देश दिया जाए या दूसरे प्रतिवादी द्वारा दायर विरोध याचिका को शिकायत के रूप में माना जाए और अपराध का संज्ञान लिया जाए तथा कानून के अनुसार आगे बढ़ा जाए। वकील बताते हैं कि संहिता के अध्याय XIV की योजना स्पष्ट रूप से इंगित करती है कि अभियुक्त पर मुकदमा चलाने के लिए कोई मामला है या नहीं, इस बारे में राय बनाने का काम जांच अधिकारियों का है और मजिस्ट्रेट पुलिस को जांच पर कोई विशेष राय बनाने और ऐसी राय के अनुसार रिपोर्ट पेश करने के लिए बाध्य नहीं कर सकता। इस मामले में, ऐसा कुछ भी नहीं है जो यह दर्शाता हो कि दूसरे प्रतिवादी द्वारा दायर विरोध याचिका को शिकायत के रूप में माना गया है, जिस स्थिति में मजिस्ट्रेट अपराध का संज्ञान लेने के लिए स्वतंत्र हो सकता है; लेकिन, वकील के अनुसार ऐसी कोई प्रक्रिया न अपनाए जाने की स्थिति में, मजिस्ट्रेट द्वारा आरोप-पत्र दाखिल करने का निर्देश देना अवैध है और संहिता के प्रावधानों द्वारा इसकी गारंटी नहीं दी जा सकती। इन तर्कों को श्री सिंह द्वारा अपनाया गया है और दोहराया गया है। नूरुद्दीन अहमद, अपीलकर्ताओं की ओर से, आपराधिक अपील संख्या 238/1966 में।

6. दोनों विद्वान वकीलों ने हमारे सामने गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा अपने पूर्ण पीठ के फैसले में व्यक्त विचारों को स्वीकार करने के लिए दबाव डाला, जिसे गुजरात राज्य बनाम शाह लखमशी (१९६६ एआईआर गुजरात २८३ (एफबी) के रूप में रिपोर्ट किया गया। दूसरी ओर, प्रतिवादी के विद्वान वकील श्री यूपी सिंह ने आपराधिक अपील संख्या २१८/१९६६ में बताया है कि उचित मामलों में, जब मजिस्ट्रेट पुलिस द्वारा प्रस्तुत अंतिम रिपोर्ट से सहमत नहीं होता है, तो उसे पुलिस को आरोप पत्र प्रस्तुत करने का निर्देश देने का अधिकार है। वकील बताते हैं कि अन्यथा, याचिका यह होगी कि पूरा मामला पुलिस अधिकारियों के विवेक पर छोड़ दिया जाएगा, और अदालतें शक्तिहीन होंगी, तब भी जब उन्हें लगे कि पुलिस की कार्रवाई उचित नहीं है। स्वाभाविक रूप से, वकील विचारों को स्वीकार करने के लिए प्रार्थना करते हैं

ए.के. रॉय बनाम पश्चिम बंगाल राज्य ए (एआईआर 1962 कैट 135 (एफबी)) में असहमति जताने वाले न्यायाधीशों द्वारा तथा बंबई और पटना उच्च न्यायालयों द्वारा राज्य बनाम मुरलीधर के रूप में रिपोर्ट किए गए निर्णयों में व्यक्त किए गए गोवर्धन (AIR 1960 BOM 240), और राम नंदन बनाम राज्य (एआईआर 1966 पेट. 438), क्रमशः।

7. अपराधों की जांच के मामले में पुलिस के कर्तव्यों और उनकी शक्तियों को ठीक से समझने के लिए, संहिता के अध्याय XIV में निहित प्रावधानों का संदर्भ लेना आवश्यक है। वह अध्याय "पुलिस को सूचना और जांच करने की उनकी शक्तियों" से संबंधित है; और इसमें धारा 154 से शुरू होकर धारा 176 तक की धाराएँ शामिल हैं। धारा 154 संज्ञेय अपराध के किए जाने से संबंधित सूचना और उसके संबंध में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया से संबंधित है। इसी तरह धारा 155 असंज्ञेय अपराधों के संबंध में सूचना से संबंधित है। इस धारा की उप-धारा (2) मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना पुलिस अधिकारी को असंज्ञेय मामले की जांच करने से रोकती है। धारा 156 पुलिस थाने के प्रभारी पुलिस अधिकारी को मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना किसी संज्ञेय मामले की जांच करने के लिए अधिकृत करती है । इसलिए, यह देखा जाएगा कि संज्ञेय अपराध की जांच के मामले में पुलिस को बड़ी शक्तियां प्रदान की गई हैं। धारा 156 की उपधारा (3) धारा 190 के तहत सशक्त किसी भी मजिस्ट्रेट को जांच का आदेश देने का प्रावधान करती है। ऐसे मामलों में जहां संज्ञेय अपराध किए जाने का संदेह है , पुलिस थाने का प्रभारी अधिकारी मजिस्ट्रेट को रिपोर्ट भेजने के बाद धारा 157 के तहत मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की जांच करने और अपराधी की खोज और गिरफ्तारी के लिए कदम उठाने का हकदार है। धारा 157(1) के प्रावधान का खंड (बी) पुलिस अधिकारी को मामले की जांच न करने का विवेक देता है, अगर उसे लगता है कि जांच शुरू करने के लिए कोई पर्याप्त आधार नहीं है। धारा 158 धारा 157 के तहत भेजी जाने वाली रिपोर्ट के मामले में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया से संबंधित है। धारा 159

धारा 157 के तहत एक रिपोर्ट प्राप्त होने पर, मजिस्ट्रेट को या तो जांच का निर्देश देने या स्वयं या अपने अधीनस्थ किसी अन्य मजिस्ट्रेट के माध्यम से मामले की प्रारंभिक जांच करने या अन्यथा संहिता के अनुसार मामले का निपटारा करने की शक्ति देता है। धारा 160 से 163 पुलिस की शक्ति से संबंधित हैं, जिसमें गवाहों की उपस्थिति की आवश्यकता होती है, गवाहों की जांच की जाती है और बयान दर्ज किए जाते हैं। धारा 165 और 166, जांच के दौरान, उनमें उल्लिखित परिस्थितियों में, तलाशी लेने के मामले में पुलिस अधिकारियों की शक्ति से संबंधित हैं। धारा 167 पुलिस द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के लिए प्रदान करती है, जब जांच 24 घंटे में पूरी नहीं की जा सकती है। धारा 168 एक जांच के परिणाम के बारे में एक पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी को एक रिपोर्ट भेजने का प्रावधान करती है, जब ऐसी जांच अध्याय XIV के तहत एक अधीनस्थ पुलिस अधिकारी द्वारा की गई है। धारा 169 किसी पुलिस अधिकारी को किसी व्यक्ति को उसके द्वारा बांड निष्पादित करने पर हिरासत से रिहा करने, और आवश्यकता पड़ने पर मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित होने के लिए अधिकृत करती है , उन मामलों में जब अध्याय XIV के तहत जांच करने पर पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को या जांच करने वाले पुलिस अधिकारी को ऐसा प्रतीत होता है कि अभियुक्त को मजिस्ट्रेट के पास भेजने को उचित ठहराने के लिए पर्याप्त साक्ष्य या संदेह का कोई उचित आधार नहीं है। धारा 170 पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को अध्याय XIV के तहत जांच के बाद और यदि उसे ऐसा प्रतीत होता है कि पर्याप्त साक्ष्य हैं, तो हिरासत में लिए गए अभियुक्त को सक्षम मजिस्ट्रेट के पास भेजने या मजिस्ट्रेट के समक्ष उसकी उपस्थिति के लिए अभियुक्त से सुरक्षा लेने की शक्ति प्रदान करती है, उन मामलों में जहां अपराध जमानतीय है । धारा 172 जांच करने वाले पुलिस अधिकारी के लिए एक डायरी रखना अनिवार्य बनाती है, जिसमें उसमें विभिन्न विवरणों को उस धारा में इंगित तरीके से दर्ज किया जाए। धारा 173 में अध्याय XIV के अंतर्गत जांच को अनावश्यक विलम्ब के बिना पूरा करने का प्रावधान है तथा पुलिस थाने के प्रभारी अधिकारी के लिए यह अनिवार्य है कि वह आवश्यक विवरण सहित, इसमें निर्धारित तरीके से, संबंधित मजिस्ट्रेट को रिपोर्ट भेजे।

8. अब केवल अध्याय XV में आने वाली धारा 190 का संदर्भ लेना आवश्यक है, जो जांच और परीक्षणों में आपराधिक न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र से संबंधित है। वह धारा "कार्यवाही शुरू करने के लिए अपेक्षित शर्तें" शीर्षक के अंतर्गत पाई जाती है और उप-धारा (1) इस प्रकार है:

"(1) इसमें इसके पश्चात् जैसा उपबंधित है उसके सिवाय, कोई भी प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट, जिला मजिस्ट्रेट या उप-मंडल मजिस्ट्रेट और इस निमित्त विशेष रूप से सशक्त कोई अन्य मजिस्ट्रेट किसी अपराध का संज्ञान ले सकता है-

(a) ऐसे तथ्यों की शिकायत प्राप्त होने पर जो ऐसे अपराध का गठन करते हैं;

(b) किसी पुलिस अधिकारी द्वारा ऐसे तथ्यों की लिखित रिपोर्ट दिए जाने पर;

(c) पर , या अपने स्वयं के ज्ञान या संदेह के आधार पर कि ऐसा अपराध किया गया है।"

9. अध्याय XIV में आने वाली उपरोक्त धाराओं से यह देखा जा सकता है कि रिपोर्ट किए गए अपराध की जांच सुनिश्चित करने के लिए बहुत विस्तृत प्रावधान किए गए हैं और जांच कानून की सीमाओं के भीतर की जाती है, बिना अभियुक्त को कोई परेशान किए और अनावश्यक या अनुचित देरी के बिना पूरी की जाती है। लेकिन ध्यान देने वाली बात यह है कि जांच करने का तरीका और विधि पूरी तरह से पुलिस पर छोड़ दी गई है, और मजिस्ट्रेट को, जहाँ तक हम देख सकते हैं, इनमें से किसी भी प्रावधान के तहत इसमें हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है। यदि जांच करने पर पुलिस थाने के प्रभारी अधिकारी या जांच करने वाले अधिकारी को यह प्रतीत होता है कि अभियुक्त को मजिस्ट्रेट के पास भेजने के लिए पर्याप्त सबूत या संदेह के उचित आधार नहीं हैं, तो धारा 169 कहती है कि अधिकारी अभियुक्त को, यदि वह हिरासत में है, मजिस्ट्रेट के सामने पेश होने के लिए बांड निष्पादित करने पर रिहा कर देगा। इसी तरह, यदि दूसरी ओर अधिकारी को यह प्रतीत होता है कि-

अध्याय XIV के तहत किसी पुलिस थाने के प्रभारी या जांच करने वाले अधिकारी को यह सूचित किया जाता है कि अभियुक्त को मजिस्ट्रेट के पास भेजने का औचित्य सिद्ध करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य या उचित आधार है, तो ऐसे अधिकारी से धारा 170 के तहत अभियुक्त को मजिस्ट्रेट के पास भेजने की अपेक्षा की जाती है; या, यदि अपराध जमानतीय है , तो ऐसे मजिस्ट्रेट के समक्ष उसकी उपस्थिति के लिए उससे सुरक्षा लेने की अपेक्षा की जाती है। लेकिन, चाहे मामला संहिता की धारा 169 के तहत आता हो या धारा 170 के तहत, जांच पूरी होने पर, पुलिस अधिकारी को धारा 173 के तहत मजिस्ट्रेट को उसमें बताए गए तरीके से विभिन्न विवरणों से युक्त एक रिपोर्ट प्रस्तुत करनी होती है। यह प्रश्न कि क्या मजिस्ट्रेट को धारा 173 के तहत रिपोर्ट प्राप्त होने पर पुलिस को आरोप-पत्र दाखिल करने का निर्देश देने की शक्ति प्राप्त है, वास्तव में रिपोर्ट प्राप्त करने पर मजिस्ट्रेट द्वारा प्रयोग किए जाने वाले क्षेत्राधिकार की प्रकृति पर निर्भर करता है।

किंग एम्परर बनाम ख्वाजा में न्यायिक समिति द्वारा की गई कुछ टिप्पणियों का उल्लेख कर सकते हैं नजीर अहमद (एआईआर 1945 पीसी 18) और इस न्यायालय द्वारा, एचएन रिशबुद और इंदर सिंह बनाम दिल्ली राज्य (एआईआर 1955 एससी 196) में: नजीर अहमद मामले (सुप्रा) में , लॉर्ड पोर्टर ने पृष्ठ 212 पर निम्नलिखित टिप्पणी की है:

"जिस तरह यह आवश्यक है कि किसी अपराध के आरोपी प्रत्येक व्यक्ति को न्याय की अदालत में जाने की स्वतंत्र पहुँच हो ताकि यदि उस पर आरोप लगाया गया है तो उसे दोषमुक्त पाया जाए, उसी तरह यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि न्यायपालिका को उन मामलों में पुलिस के काम में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जो उनके अधिकार क्षेत्र में आते हैं और जिनमें कानून उन्हें जांच का कर्तव्य सौंपता है। भारत में, जैसा कि दिखाया गया है, न्यायिक अधिकारियों से किसी भी अधिकार की आवश्यकता के बिना कथित संज्ञेय अपराध की परिस्थितियों की जांच करने का पुलिस के पास एक वैधानिक अधिकार है, और यह, जैसा कि माननीय न्यायाधीश सोचते हैं, एक दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम होगा यदि न्यायालय के अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र के प्रयोग द्वारा उन वैधानिक अधिकारों में हस्तक्षेप करना संभव माना जाए। न्यायपालिका के कार्य और

पुलिस एक दूसरे की पूरक है, एक दूसरे को ओवरलैप नहीं करती, तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता का संयोजन कानून और व्यवस्था के उचित पालन के साथ तभी प्राप्त किया जा सकता है जब प्रत्येक को अपना कार्य स्वयं करने दिया जाए, तथा इसमें सदैव न्यायालय के हस्तक्षेप का अधिकार भी शामिल हो। किसी उचित मामले में जब दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 491 के तहत आवेदन किया जाता है तो बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति में निर्देश दिए जाते हैं। हालांकि, वर्तमान मामले में, न्यायालय के कार्य तब शुरू होते हैं जब उसके समक्ष आरोप पेश किया जाता है, और तब तक नहीं। "

पश्चिम बंगाल राज्य बनाम एस.एन. बसाक (ए.आई.आर. सी . 1963 एस.सी. 447) में, अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया है। इस न्यायालय ने ऋषभुद और इंदर सिंह मामले (ए.आई.आर. 1955 एस.सी. 196) में , पृष्ठ 1156 पर, निम्नलिखित टिप्पणी की है:

> "जांच आमतौर पर किसी अपराध के होने से संबंधित सूचना पर शुरू होती है, जो पुलिस थाने के प्रभारी अधिकारी को दी जाती है और संहिता की धारा 154 के तहत दर्ज की जाती है। यदि इस तरह से प्राप्त सूचना से या अन्यथा, पुलिस थाने के प्रभारी अधिकारी को किसी अपराध के होने का संदेह होने का कारण है, तो उसे या उसके द्वारा प्रतिनियुक्त किसी अन्य अधीनस्थ अधिकारी को मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की जांच करने के लिए घटनास्थल पर जाना होगा और यदि आवश्यक हो तो अपराधी की खोज और गिरफ्तारी के लिए उपाय करने होंगे। इस प्रकार जांच में मुख्य रूप से मामले के तथ्यों और परिस्थितियों का पता लगाना शामिल है। परिभाषा के अनुसार, इसमें पुलिस अधिकारी द्वारा साक्ष्य एकत्र करने के लिए संहिता के तहत की गई सभी कार्यवाही शामिल है।"
>
> पुनः, संहिता के अध्याय XIV के कुछ प्रावधानों के संदर्भ के बाद, पृष्ठ 1157 पर यह टिप्पणी की गई है:
>
> "इस प्रकार, संहिता के तहत जांच में आम तौर पर निम्नलिखित चरण शामिल होते हैं: (1) घटनास्थल पर जाना, (2) मामले के तथ्यों और परिस्थितियों का पता लगाना, (3) संदिग्ध अपराधी की खोज और गिरफ्तारी, (4) अपराध के किए जाने से संबंधित साक्ष्य एकत्र करना, जिसमें (ए) विभिन्न व्यक्तियों (आरोपी सहित) की जांच और उनके बयानों को कम करना शामिल हो सकता है।

यदि अधिकारी उचित समझे तो बयान को लिखित रूप में प्रस्तुत करना, (ख) जांच के लिए आवश्यक समझी जाने वाली और मुकदमे में पेश की जाने वाली चीजों को जब्त करने के स्थानों की तलाशी, और (5) इस बारे में राय बनाना कि क्या एकत्र की गई सामग्री के आधार पर अभियुक्त को मजिस्ट्रेट के सामने मुकदमे में पेश करने का मामला है और यदि ऐसा है तो धारा 173 के तहत आरोप पत्र दाखिल करके इसके लिए आवश्यक कदम उठाना... यह भी स्पष्ट है कि जांच में अंतिम कदम यानी इस बारे में राय बनाना कि क्या अभियुक्त को मुकदमे में पेश करने का मामला है या नहीं, पुलिस थाने के प्रभारी अधिकारी का होगा।"

XIV की योजना स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि अभियुक्त पर मुकदमा चलाने के लिए कोई मामला है या नहीं, इस बारे में राय बनाने का काम पुलिस थाने के प्रभारी अधिकारी पर छोड़ दिया गया है। ऊपर उल्लिखित इन सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, हमें इस मामले में विचार के लिए उठने वाले प्रश्न पर विचार करना होगा। उच्च न्यायालयों ने माना है कि मजिस्ट्रेट के पास ऐसी परिस्थितियों में पुलिस को आरोप-पत्र दाखिल करने के लिए कहने का कोई अधिकार नहीं है, उन्होंने अपना निर्णय दो सिद्धांतों पर आधारित किया है। (ए) कि संहिता में ऐसा कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं है जो मजिस्ट्रेट को ऐसा आदेश पारित करने का अधिकार देता हो; और (बी) अध्याय XIV की योजना के मद्देनजर, ऐसी शक्ति का अनुमान वेंकट के अनुसार नहीं लगाया जा सकता है सुब्बा बनाम अंजनावुलु (एआईआर 1932 मैड 673), अब्दुल रहीम बनाम अब्दुल मुक्तदीन (एआईआर 1953 असम 112); अमर प्रेमानंद बनाम राज्य (एआईआर 1960 मध्य प्रदेश प्रा 12); ए.के. रॉय बनाम पश्चिम बंगाल राज्य 2; तथा गुजरात राज्य बनाम शाह लखमशील में बहुमत का मत । दूसरी ओर, उच्च न्यायालयों ने ऐसी शक्ति को मान्यता दी है, तथा उन्होंने अपना निर्णय पुनः दो आधारों पर आधारित किया है, अर्थात् (क) जहां पुलिस द्वारा जांच के पश्चात रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती है, मजिस्ट्रेट को न्यायिक रूप से उससे निपटना होता है, जिसका अर्थ यह होगा कि जब रिपोर्ट स्वीकार नहीं की जाती है, तो मजिस्ट्रेट पुलिस को उपयुक्त निर्देश दे सकता है; तथा (ख) मजिस्ट्रेट को पुलिस द्वारा जांच के संचालन पर पर्यवेक्षण दिया जाता है, और

इसलिए , ऐसी शक्ति को मजिस्ट्रेट द्वारा राज्य बनाम मुरलीधर के मामले में मान्यता दी जा सकती है गोवर्धन ; और राम नंदन बनाम राज्य।

12. हालांकि यह हो सकता है कि पुलिस द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट को मजिस्ट्रेट द्वारा न्यायिक रूप से निपटाया जाना चाहिए, और हालांकि मजिस्ट्रेट के पास कुछ पर्यवेक्षी शक्तियां हो सकती हैं, फिर भी, हम इस दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं कि केवल इन विचारों से यह कहा जा सकता है कि जब पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत करती है कि किसी आरोपी को मुकदमे के लिए भेजने का कोई मामला नहीं बना है, तो मजिस्ट्रेट को पुलिस को आरोप-पत्र दाखिल करने का निर्देश देने का अधिकार है। लेकिन, हम यह स्पष्ट कर सकते हैं कि इसका यह मतलब नहीं है कि मजिस्ट्रेट पूरी तरह से शक्तिहीन है, क्योंकि, जैसा कि बाद में संकेत दिया जाएगा, कानून के अनुसार अपराध का संज्ञान लेना और आगे बढ़ना उसके लिए खुला है। हमें धारा 173(3) के तहत ऐसी कोई शक्ति भी नहीं मिलती है, जैसा कि ऊपर उद्धृत कुछ निर्णयों में अनुमान लगाया जा रहा है। जैसा कि हमने विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा विभिन्न निष्कर्षों पर पहुंचने के लिए अपनाए गए दृष्टिकोण को व्यापक रूप से इंगित किया है, हम उन निर्णयों का विस्तार से उल्लेख करना आवश्यक नहीं समझते हैं।"

8. तदनुसार हम उच्च न्यायालय के विवादित आदेश को रद्द करते हैं और मामले को निम्नलिखित पहलुओं पर विचार करने के लिए उसे वापस भेजते हैं:

(a) क्या प्रतिवादी संख्या 2 के कहने पर सत्र न्यायाधीश के समक्ष पुनरीक्षण याचिका स्वीकार्य थी और वह भी काफी लम्बे समय के बाद;

(b) क्या अपीलकर्ता को सुनने की आवश्यकता है; और

(ग) क्या सूचना देने वाले को नोटिस दिया जाना आवश्यक है।

9. अपील उपर्युक्त सीमा तक स्वीकार की जाती है।

डीजी अपील आंशिक रूप से स्वीकृत।

यह अनुवाद लीना मुखर्जी, पैनल अनुवादक द्वारा किया गया है।